(ग) आस्था (Faith)—आस्था तो धार्मिक विश्वास की जननी है, जहाँ आस्था नहीं वहाँ विश्वास नहीं उत्पन्न हो सकता। कुछ लोग आस्था को ही विश्वास समझते हैं तो कुछ लोग इसे श्रद्धा या निष्ठा समझते हैं। वस्तुतः आस्था आन्तरिक निष्ठा है, जिसके कारण विश्वास उत्पन्न होता है। आस्था का सम्बन्ध हृदय की अन्तिम गहराई से है। विश्वास बौद्धिक होता है परन्तु यथार्थ विश्वास उसे ही होता है जिसके हृदय में गहरी आस्था हो। अतः धार्मिक विश्वास के लिए आस्था की आवश्यकता है। दैवीय-प्रकाशना अथवा ईश्वरीय झलक की स्वीकृति में आस्था ही प्रधान है। ईश्वरीय प्रेरणा को आस्थावान ही ग्रहण करता है। अतः आस्था को ईश्वर सम्बन्धी सभी प्रेरणाओं का स्रोत माना गया है।

आस्था का अर्थ—इसके सम्बन्ध में कुछ विवाद है। अंग्रेजी में इसे **Faith** कहते हैं। आस्था के समान **Faith** का अर्थ भी बड़ा व्यापक है। **Faith** शब्द का प्रयोग मुख्यतः तीन अर्थों में किया जाता है—

(क) धर्मशास्त्रों की स्वीकृति के अर्थ में आस्था या **Faith** का प्रयोग होता है। धर्म-शास्त्र में ईश्वर की आस्था होती है। इस आस्था को मनुष्य को स्वीकार करना होता है। अतः जिसे आस्था हो वह इसे स्वीकार करेगा तथा जिसमें आस्था न हो वह इसे स्वीकार नहीं करेगा; परन्तु जिसमें आस्था न हो वह श्रुति-विरोधी तथा धर्मविरोधी समझा जाता है। अतः **Faith** या आस्था श्रुति की स्वीकृति है।

(ख) आस्था या **Faith** को ईश्वरीय देन भी कहते हैं। ईश्वर के वचनों के प्रति आस्था या **Faith** ईश्वर की कृपा का फल है। जिस पर ईश्वर की कृपा नहीं उसमें आस्था नहीं उत्पन्न हो सकती। इसी कारण अनास्थावान को नास्तिक भी समझा जाता है।

Scanned by TapScanner

(ग) आस्था या **Faith** आज्ञाकारिता है। गहरी आस्था के कारण ही व्यक्ति ईश्वर के वचन में विश्वास करता है तथा विश्वास के अनुसार कार्य करता है। अतः ईश्वर की आज्ञा को मानना तथा आज्ञा के अनुसार आचरण करना ही आस्था है। यहाँ पर आस्था और विश्वास को एक ही माना गया है, परन्तु दोनों एक नहीं।

आस्था संज्ञानात्मक तथा असंज्ञानात्मक दोनों हुआ करती है। संज्ञानात्मक अर्थ में आस्था ज्ञान प्रकट करती है, जैसे कोई व्यक्ति कहता है कि उसे ईश्वर के अस्तित्व में आस्था है; यहाँ पर वह व्यक्ति स्पष्टतः यह कहना चाहता है कि उसे ईश्वर के अस्तित्व का बोध या ज्ञान है। यहाँ आस्था संज्ञानात्मक या ज्ञानपरक है, परन्तु आस्था का प्रयोग असंज्ञानात्मक अर्थ में भी होता है। उदाहरणार्थ कोई व्यक्ति कहता है कि उसे ईश्वर में आस्था है, यहाँ पर आस्था का अर्थ उसकी श्रद्धा है। उस व्यक्ति के मन में ईश्वर के प्रति श्रद्धा है। यहाँ आस्था असंज्ञानात्मक है। अतः आस्था का प्रयोग दोनों अर्थों में किया जाता है।

आस्था की विशेषताएँ—(क) आस्था अबौद्धिक होती है। बुद्धि का मुख्य कार्य तर्क करना तथा विश्लेषण करना है। तर्क या विश्लेषण का प्रयोग आस्था के लिए नहीं हो सकता। तर्क और प्रमाण तो बौद्धिक व्यवहार हैं, इनका आस्था से सम्बन्ध नहीं। कुछ विद्वान तो यहाँ तक मानते हैं कि आस्था बुद्धि से पहले है।

(ख) आस्था का सम्बन्ध भावना से है। यही कारण है कि जिस व्यक्ति या विषय में आस्था होती है उससे भावनात्मक या रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। उस विषय या वस्तु पर हम सर्वस्व न्योछावर करने को तैयार हो जाते हैं। आस्था और विश्वास में इतनी प्रबलता होती है कि इसका परित्याग सम्भव नहीं। व्यक्ति प्राणों का परित्याग कर सकता है परन्तु प्रबल आस्था का नहीं।

(ग) आस्था श्रद्धा रूप है, प्रायः विद्वान आस्था और श्रद्धा को पर्यायवाची मानते हैं। कुछ लोगों का कहना है कि श्रद्धा आस्था का फल है। दोनों का सम्बन्ध निष्ठा से है। धर्म-शास्त्र या ईश्वर-वचन में हमारी गहरी आस्था होती है, श्रद्धा होती है और हम इसे पूर्णतः सत्य मानकर इसके अनुसार आचरण करते हैं। हमारा आचरण हमारी निष्ठा को व्यक्त करता है।

(घ) आस्था की उत्पत्ति हृदय में होती है परन्तु इसकी अभिव्यक्ति आचरण में होती है। इसीलिए कहा जाता है कि आस्था के बिना आचरण निराधार है। आचरण कर्तव्य का पालन करता है। कर्तव्य के पालन के पीछे प्रशंसा और दण्ड का भाव है। हमारे भीतर यह आस्था है कि ईश्वर के द्वारा बतलाये गये कर्म का

Scanned by TapScanner

पालन करने से ईश्वर प्रसन्न होगा तथा स्वर्ग का सुख प्रदान करेगा। इसके विपरीत हमारे भीतर एक भय की भावना है कि ईश्वर के प्रतिकूल चलने पर ईश्वर दण्ड देगा, नर्क का दुःख भोगना पड़ेगा। इससे स्पष्ट होता है कि धार्मिक आचरण का आधार आस्था ही है। धर्म के अनुसार आचरण वही कर सकता है जिसमें धर्म के प्रति आस्था हो।

विश्वास और आस्था (Belief and Faith)—प्राय: विश्वास और आस्था को एक ही समझा जाता है। साधारणत: जिस व्यक्ति या विषय में आस्था हो उसको भी मान लिया जाता है, परन्तु धर्म-दर्शन के विद्वान् आस्था और विश्वास में भेद करते हैं। विद्वानों का कहना है कि धर्म में आस्था और विश्वास दोनों की आवश्यकता है। धार्मिक आचरण किसी एक में ही सम्भव नहीं, परन्तु दोनों के स्वरूप में भेद है। इनके भेद का आधार निम्नलिखित है—

(क) आस्था का सम्बन्ध हृदय से अधिक है और विश्वास का सम्बन्ध बुद्धि से अधिक है, इसीलिए आस्था को हृदय-परक और विश्वास को बुद्धि-परक माना जाता है। आस्था का विषय पूर्ण रूप से आन्तरिक हुआ करता है परन्तु विश्वास का सम्बन्ध आन्तरिक और बाह्य दोनों हुआ करता है।

(ख) आस्था का विषय अपरिवर्तनशील माना जाता है, परन्तु विश्वास का विषय परिवर्तनशील भी हो सकता है। किसी कारणवश हममें क्षणिक विश्वास उत्पन्न होता है, दूसरे क्षण विश्वास समाप्त भी हो सकता है, परन्तु आस्था बहुत लम्बे समय के बाद उत्पन्न होती है और विपरीत उदाहरणों से भी हिलती नहीं। यही कारण है कि विश्वास में परिवर्तन हो सकता है परन्तु आस्था में नहीं।

(ग) विश्वास में व्यक्ति तटस्थ रहता है परन्तु आस्था में लगाव होता है। हमें कुछ कारणों से किसी विषय की अच्छाई में विश्वास हो सकता है, परन्तु यह विश्वास हमारे व्यक्तित्व में परिवर्तन नहीं ला सकता, परन्तु जिस विषय में हमारी आस्था होती है उससे हमारा आन्तरिक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, अत: हम इससे अलग नहीं हो सकते।

(घ) आस्था की अभिव्यक्ति आचरण में होती है परन्तु विश्वास आचरण में नहीं भी अभिव्यक्त हो सकता है। यदि ईश्वर में हमारी आस्था है तो ईश्वर के अनुकूल आचरण करना ही हम धर्म समझते हैं, परन्तु यह आवश्यक नहीं कि जिसे केवल बौद्धिक विश्वास हो वह उसके अनुकूल धार्मिक आचरण भी करे। यही कारण है कि धर्म के क्षेत्र में विश्वास की अपेक्षा आस्था को अधिक महत्वपूर्ण माना गया है। इसे धार्मिक विश्वास का आधार स्वीकार किया गया है।

Scanned by TapScanner